

महिला शिक्षकों का शैक्षिक एवं व्यावहारिक अध्ययन ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों के सन्दर्भ में

सीमा वर्मा^{1*}, डॉ. लता मालवीय²

^{1,2} भाभा विश्वविद्यालय, भोपाल

सार - प्रत्येक राष्ट्र के लिए प्राथमिक शिक्षा का अपना अलग महत्व होता है। यहाँ तक की विकसित राष्ट्र भी प्राथमिक शिक्षा को समाज के नव-निर्माण का आधार मानकर इस शिक्षा को पूरी गम्भीरता न ईमानदारी के साथ लागू करते हैं। परन्तु हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा के प्रति न तो सरकार ही पूरी तरह गंभीर है और न ही समाज इधर प्राथमिक शिक्षा विशेषकर जो ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों के रूप में आयोजित की जाती है इसमें शिक्षण हेतु महिला शिक्षकों की भूमिका निरन्तर बढ़ती जा रही है। किन्तु इन शिक्षिकाओं की शिक्षा का स्तर अधिकांशतः अति उच्च स्तर का होता है जिससे आज अनेक प्रकार की व्यवहार व समायोजन सम्बन्धी समस्याएं भी उत्पन्न होने लगी हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि इन ग्रामीण प्राथमिक विद्यालय की अध्यापिकाओं में अपनी उच्च शिक्षा को लेकर उच्च भावना ग्रन्थि का निर्माण हो जाता है साथ ही छोटी आयु के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने को लेकर हीन भावना ग्रन्थि निर्मित हो जाती है जो उनके व्यक्तिगत जीवन से लेकर शिक्षण व्यवसाय तक को प्रभावित करती है। परिणाम स्वरूप अनेक व्यवहार सम्बन्धी समस्याएं समयानुसार उत्पन्न होती रहती है। इससे शिक्षिकाओं को न तो व्यावसायिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है और न ही ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों के बालक-बालिकाओं का बहुमुखी विकास ही हो पाता है। इस प्रकार सरकार व समाज दोनों को ध्यान देने की आवश्यकता है।

-----X-----

परिचय

बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की आधारशिला शिक्षा द्वारा रखी जाती है। भारत के प्राचीन मनीषियों , विद्वानों ने शिक्षा को चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया माना है। इन विद्वानों ने भारतीय शिक्षा हेतु एक उपयुक्त प्रणाली का चयन किया जिससे एक ओर जहाँ विशाल वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखा वहीं दूसरी ओर ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में सृजनशील विचारकों व विद्वानों को भी जन्म दिया। यही कारण है कि भारत वर्ष की प्राचीन शिक्षा आज भी अनुपम व व्यावहारिक है। इसी शिक्षा की प्रशंसा करते हुए एफडब्ल्यू० टामस ने लिखा है “भारत में शिक्षा विदेशी पौधा नहीं है। संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है , जहां ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो , या जिसने इतना चिरस्थायी और शक्तिशाली प्रभाव डाला हो। ”

हमारे देश में प्राचीन काल से ही शिक्षा का महत्व सर्वविदित है। उस समय शिक्षा को ज्ञान-चक्षु, प्रकाश स्रोत, अन्तर्ज्योति

व मनुष्य के तृतीय नेत्र के रूप में अभिहित किया गया है। विद्वानों, मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षा को निरन्तर चलने वाली प्रक्रियार माना है। जो जन्म से मृत्यु तक गतिमान रहती है किन्तु यह शिक्षा का व्यापक स्वरूप है। संकुचित रूप में शिक्षा का “तात्पर्य विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा से है। इस शिक्षा को प्रमुखतः तीन भागों में विभाजित किया गया है- प्राथमिक शिक्षा , माध्यमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा। वैसे तो बालक के जीवन व उसके व्यक्तित्व के विकास में तीनों स्तरों को शिक्षा का महत्व है किन्तु प्राथमिक शिक्षा का अपना एक अलग ही स्थान है। प्राथमिक शिक्षा प्रत्येक देश के लिए प्रथम , अनिवार्य आवश्यकता है। व्यक्तित्व विकास की यह प्रथम सीढ़ी है , जिसे सफलतापूर्वक पूर्ण करने के पश्चात ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ वास्तव में जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है , उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्वपूर्ण स्थान प्राथमिक शिक्षा का है , उतना किसी

दूसरी सामाजिक, राजनीतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर, देश की पूरी जनसंख्या से होता है। इस शिक्षा का प्रत्येक कदम किसी न किसी रूप में हर व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित होता है। विशेषतया ग्रामीण क्षेत्रों की ग्रामीण जनता से इसका सीधा सीधा सम्बन्ध होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जनसाधारण तक जब शिक्षा का प्रकाश पहुंचेगा तभी हम शब्द की बहुमुखी प्रगति का स्वप्न साकार कर सकते हैं। इस शिक्षा के प्रति लगाव कम होने के कारण ही भारतवर्ष सदियों तक गुलाम बना रहा। ऐसे में प्राथमिक शिक्षा का उत्थान करके ही देश का कल्याण सम्भव है। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के अग्रकित वाक्य सत्य से युक्त है, “ मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना महान राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन के कारणों में से एक है। सब राजनीति उस समय तक विफल रहेगी, जब तक कि भारत में जनसाधारण को एक बार फिर भली प्रकार शिक्षित नहीं कर दिया जायेगा।

यदि गम्भीरता से विचार किया जाए तो हमारे देश में शिक्षा की जड़े प्राचीन काल से ही गहरे पेढ़ी हुई हैं किन्तु यदि हम स्त्री-पुरुष के मध्य शिक्षा के सन्तुलन की बात करे तो स्त्री के साथ सदैव भेदभाव किया गया है। पुरुष युगों से नारी पर शासन करता आ रहा है, तभी से नारी अज्ञानता व विवशता की जंजीर में जकड़ी हुई अपनी शिक्षा व उत्थान की राह देख रही थी। वर्तमान में इस जंजीर की कड़ियां चटख-चटख कर टूटती जा रही हैं। नारी, घर की चहारदीवारी के अन्दर घुट-घुटकर जिन्दगी के दिन काटने वाली, विना पढ़ी लिखी घूँघट की गुड़िया नहीं है। आज वह शिक्षित महिला के रूप से ब्राह्म्य जगत में प्रवेश कर रही है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से प्रतिस्पर्धा कर रही है। जहाँ तक ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित प्राथमिक विद्यालयों की बात है तो यह सत्य है कि आजादी के बाद हमारे देश में इन विद्यालयों का व्यापक प्रचार प्रसार व निर्माण तथा संचालन हुआ। साथ ही इन विद्यालयों के विशेष - कर ग्रामीण क्षेत्रों जहाँ आवागमन के साधन प्रारम्भ में न के बराबर थे वहाँ भी शिक्षा के माध्यम से बालक-बालिकाओं के हृदय में ज्ञान की ज्योति जलाई।

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालक-बालिकाओं की उम्र 6-14 वर्ष के मध्य होती है। ऐसे में शिक्षा क्षेत्र से जुड़े विद्वानों, दार्शनिकों व मनोवैज्ञानिकों ने काफी विचार विमर्श के बाद इस बात का प्रतिपादन किया कि इस रूप के बालक बालिकाओं को शिक्षा देने में पुरुष

अध्यापकों की अपेक्षा महिला शिक्षकों को वरीयता दी जाय। बाल्यावस्था के बालक-बालिकाओं को उनके मनोभावों व विशिष्टता को समझकर तदनु रूप शिक्षा देने का कार्य केवल नारी के रूप में एक मां ही कर सकती है।

स्वतंत्रता के पश्चात देश में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इन विद्यालयों में पठन-पाठन का कार्य सुचारु रूप से करने के लिए बड़ी संख्या में अध्यापक-अध्यापिकाओं की आवश्यकता की पूर्ति में महिला शिक्षकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। किन्तु अब भी उनकी शिक्षा सम्बन्धी अनेक समस्याएं उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक बनी हुई हैं। ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण घर रही महिला शिक्षकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश अध्यापिकाएं उच्च शिक्षा प्राप्त हैं जो अन्य नौकरियों अथवा अपनी डिग्री के अनुरूप पद न प्राप्त होने पर मजबूरी में ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण करने को बाध्य होती है। ऐसे में उन्हें छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाने में उनकी स्वाभाविक रुचि नहीं होती है उनके द्वारा किया गया शिक्षण मात्र औपचारिक बनकर रह जाता है यह इस समस्या का व्यावहारिक पक्ष है जो ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों के विकास को अवरुद्ध करता है।

इसके साथ ही यह भी देखने में आया है कि ये महिला शिक्षक जो ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण करती हैं उनमें से अधिकांश शिक्षिकार्ये शहरों में ही निवास करती हैं और वे उच्च पद प्राप्त करने हेतु तैयारी में लगी रहती हैं। ये शिक्षिकार्ये प्रतिदिन शिक्षण हेतु शहरों से ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में जाती-आती हैं। आवागमन के साधनों की सुचारु व्यवस्था न होने के कारण अधिकांशतः देर से विद्यालयों पहुंचती हैं। तथा जल्दी ही विद्यालय से अपने घर हेतु प्रस्थान करती हैं। इसका व्यावहारिक प्रभाव यह होता है कि वे बच्चों को न तो ठीक से समझ पाती हैं और समयाभाव के कारण न ही उन्हें अच्छे ढंग से पढ़ा ही पाती हैं। ऐसे में ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों के बालकों के व्यक्तित्व का विकास संतुलित ढंग से नहीं हो पाता।

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षणरत शिक्षिकाएं जो शहरी क्षेत्रों में पली बड़ी तथा वही शिक्षित होती हैं वे जब ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण हेतु नियुक्त होती हैं तो उनके शिक्षण में भाषा सम्बन्धी समस्या भी उत्पन्न होती है। शिक्षा शिक्षण में सम्प्रेषण का अत्यधिक महत्व होता है। सम्प्रेषण का आधार भाषा

को ही माना गया है। शहरी क्षेत्रों की शिक्षिकाओं के शिक्षण हेतु प्रयुक्त भाषा को ग्रामीण क्षेत्र के बालक अच्छे ढंग से समझ नहीं पाते ऐसे में वे दिये गये ज्ञान को ग्रहण करने में असुविधा का अनुभव करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण करने वाली शिक्षिकाओं को समायोजन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। वे अपने ही घर में अनेक प्रकार की समायोजनात्मक समस्याओं का सामना करती है। घर से शिक्षण हेतु निकलते ही आवागमन की समस्या सामने आती है। पुनः अनेक सामाजिक समस्यायें उत्पन्न होती हैं विद्यालय पहुंचने पर वातावरण की भिन्नता के कारण बच्चों से समायोजन की समस्या, देर से विद्यालय पहुंचने पर विद्यालय प्रशासन से समायोजन की समस्या साथ ही एक शिक्षिकाओं का विवाह हो जाने पर उनके ससुराल वाले कभी-कभी नौकरी छोड़ने का भी दबाव बनाते हैं नौकरी न छोड़ने पर उन्हें तरह-तरह की प्रताड़नाओं को भी सहन करना पड़ता है, रिश्तों के टूटने का भी भय बना रहता है। शिक्षण कार्य छोड़ देने पर उनकी शिक्षा दीक्षा बेकार चली जाती है वे कभी कभी तनाव में भी चली जाती हैं। इस प्रकार उनका अच्छा-भला जीवन लिंग-भेद के कारण संकट ग्रस्त हो जाता है।

उपसंहार

वैसे तो हमारे देश में शिक्षा-शिक्षण के क्षेत्र में निरंतर उन्नति की है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र अभी भी शहरी क्षेत्रों की बराबरी पर नहीं आ सके हैं। इसके लिए सरकार निरन्तर कदम उठा रही है फिर भी ये कदम अभी तक अपर्याप्त साबित हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों के बालक-बालिकाओं की उम्र बाल्यावस्था की होती है। उनकी कोमल भावनाओं को एक मां ही समझ सकती है। इसीलिए आज प्राथमिक शिक्षा में शिक्षिकाओं का वर्चस्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है किन्तु इन शिक्षिकाओं की शिक्षा-दीक्षा का उनके शिक्षण व्यवहार पर जो प्रभाव पड़ता है उसका आकलन निरन्तर सरकार व समाज द्वारा किया जाना चाहिए। इस आकलन के पश्चात ही तात्कालिक रूप में उत्पन्न समस्याओं से इस ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों को शिक्षिकाओं को निजात मिल सकेगी तभी उनके शिक्षण व्यवहार में अपेक्षित सुधार सम्भव होगा।

सन्दर्भ

- 1- पाठक, पी०डी०, त्यागी, गुरसरदास, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं , आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स- 2008,

- 2- ठाकुर, यतीन्द्र, समावेशी शिक्षा , आगरा, अग्रवाल ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स- 2020-21
- 3- जायसवाल, डॉ. सीताराम शिक्षा की अवधारणाएं संरचना-पू, लखनऊ प्रकाशन केन्द्र 2022-23
- 4- पाण्डेय, डॉ. रामशकल , शिक्षा दर्शन आगरा- 2 विनोद पुस्तक मंदिर-2006,
- 5- सुखिया, एस.पी., विद्यालय प्रशासन एवं संगठन , आगरा-2, विनोद पुस्तक मन्दिर-2006,

Corresponding Author

सीमा वर्मा*

भाभा विश्वविद्यालय, भोपाल